दैनिक जागरण

संकट में भी एक अवसर छिपा होता है

जींद का संदेश

आम तौर पर विधानसभा उपचुनावों का एक सीमित महत्व ही होता है, लेकिन कई बार उनका महत्व बढ़ भी जाता है। उनकी महत्ता इससे भी तय होती है कि वे कहां और किस राजनीतिक माहौल में हुए? यह स्वाभाविक है कि राजस्थान के रामगढ़ विधानसभा सीट के मुकाबले हरियाणा के जींद विधानसभा क्षेत्र में हुए उपचुनाव की अहमियत इसलिए अधिक है, क्योंकि वे तब हुए जब इस राज्य की खट्टर सरकार का कार्यकाल कुछ ही महीने का रह गया है। इसके विपरीत रामगढ़ में उपचुनाव तब हुए जब राजस्थान की अशोक गहलोत सरकार को सत्ता संभाले एक माह भी नहीं हुआ है। वहां माहौल सरकार के पक्ष में होना और अभी सत्ता विरोधी रुझान की गुंजाइश न बनना स्वाभाविक है। ऐसे परिवेश में कांग्रेस प्रत्याशी की जीत से शायद ही किसी को हैरानी हो। वहां के मुकाबले जींद के नतीजे इसलिए चौंकाने वाले हैं, क्योंकि एक तो भाजपा प्रत्याशी ने जोरदार जीत हासिल की और दूसरे राजनीतिक तौर पर कांग्रेस के भारी-भरकम उम्मीदवार रणदीप सिंह सुरजेवाला तीसरे स्थान पर नजर आ रहे हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि भाजपा ने यह सीट इंडियन नेशनल लोकदल से न केवल छीन ली, बल्कि उसके प्रत्याशी को पांचवें स्थान पर खिसका दिया।

यह सही है कि जींद में भाजपा के विजयी प्रत्याशी कृष्णा मिड्ढा इनेलो के दिवंगत विधायक के बेटे हैं और उन्हें लोगों की सहानुभूति का भी लाभ मिला होगा, लेकिन इससे भाजपा के लिए इस जीत का राजनीतिक महत्व कम नहीं हो जाता। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि भाजपा प्रत्याशी ने कहीं बड़े अंतर से जीत हासिल की है। जींद विधानसभा क्षेत्र के उपचुनाव नतीजे को लेकर प्रदेश के साथ देश की दिलचस्पी इसलिए अधिक थी, क्योंकि एक तो खट्टर सरकार की लोकप्रियता का परीक्षण होना और दूसरे इसका भी पता लगना था कि विधानसभा चुनाव में बयार किस ओर बहने वाली है? भाजपा प्रत्याशी ने यहां शानदार जीत हासिल कर न केवल यह रेखांकित किया कि खट्टर सरकार पर लोगों का भरोसा कायम है, बल्कि यह भी प्रकट किया कि हरियाणा में भाजपा उस संभावित माहौल का मुकाबला करने में भी सक्षम है जिसके तहत विपक्षी एकता को उसके लिए एक चुनौती माना जा रहा है। यह जीत जहां खट्टर सरकार के साथ-साथ भाजपा को उत्साहित करने और आत्मविश्वास से भरने वाली है वहीं कांग्रेस के साथ अन्य विपक्षी दलों को सबक सिखाने वाली है। शायद सबसे बड़ा सबक कांग्रेस के लिए है जिसने रणदीप सिंह सुरजेवाला को चुनावी मैदान में उतार कर यह दिखाने की कोशिश की थी कि वह उनकी जीत के साथ ही राज्य में सरकार बनाने की दावेदार बन जाएगी। यह दांव उलटा पड़ गया। कांग्रेस के लिए रणदीप सिंह सुरजेवाला की हार इसलिए कहीं अधिक सालने वाली है, क्योंकि वह भाजपा को सीधी चुनौती भी नहीं दे सके। यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि उनकी करारी हार के पीछे एक बड़ी वजह भितरघात भी है। ऐसा लगता है कि दिल्ली में बैठा कांग्रेस का नेतृत्व यह भी नहीं देख सका कि बगल के राज्य हरियाणा में उसकी जमीनी हकीकत क्या है? देखना है कि जींद के नतीजे से उसकी नींद टूटती है या नहीं?

पेशेवरों का प्रमाणीकरण

असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत पेशेवरों के प्रमाणीकरण की बिहार सरकार की योजना सराहनीय कदम है। यह इसलिए भी जरूरी है कि सरकार के पास यह जानकारी हो कि राज्य की कितनी फीसद जनसंख्या हुनरमंद है। गौर करें तो विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत कई हुनरमंद न तो अपने कौशल के महत्व को समझ पाते हैं और न ही उन्हें उनकी विशिष्टता का वाजिब लाभ मिल पाता है। यहां तक कि ऐसे लोगों को सरकार के स्तर पर सुलभ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का भी लाभ नहीं मिल पाता है। इस लाभ को पाने के लिए ऐसे लोगों का निबंधन होना जरूरी है। राज्य की बड़ी जनसंख्या विभिन्न पेशे से जुड़कर अर्थोपार्जन में लगी है, लेकिन इनकी पहचान कुशल श्रमिक के रूप में नहीं है। अर्थव्यवस्था को मजबूती और गति देने में यह जनसंख्या सक्रिय है, लेकिन सरकार भी इन्हें चिन्हित नहीं कर पाई है। छोटे-छोटे काम धंधे में लगे ऐसे हुनरमंदों की पहचान बननी ही चाहिए। राज्य सरकार ने वर्ष 2020 तक एक करोड़ युवाओं को हुनरमंद बनाने का लक्ष्य तय किया है। ये युवा प्रशिक्षण प्राप्त कर राज्य सरकार द्वारा कौशल के लिए प्रमाणित किए जाएंगे। इसके साथ यदि विभिन्न क्षेत्रों में पूर्व से कार्यरत हुनरमंदों को अपग्रेड कर दिया जाए तो कुशल कामगारों की संख्या कई गुना बढ़ जाएगी। राज्य ही नहीं देश के विभिन्न हिस्सों में जिस प्रकार कुशल कामगारों की मांग है, इसके लिए जरूरी है कि हुनरमंदों का प्रमाणीकरण हो ताकि क्षेत्र विशेष के नियोजन में उन्हें वरीयता मिले। बिहार के हुनरमंदों की पूर्व से ही देश के विभिन्न हिस्सों में मांग रही है। यदि उन्हें राज्य सरकार द्वारा प्रमाणित कर दिया जाए तो उनकी स्थिति में सुधार होगा। सामाजिक सुरक्षा का लाभ भी उन्हें मिल सकेगा, जिसकी नितांत आवश्यकता है। राज्य सरकार ने इस उद्देश्य से आरपीएल (रिकॉगनेशन ऑफ प्रायर लर्निंग) योजना बनाई है। इस योजना पर नेशनल सेक्टर स्किल काउंसिल ने अपनी सहमति दे दी है। योजना के अनुसार स्थानीय स्तर पर विभिन्न पेशे से जुड़े हुनरमंदों को पांच बिंदुओं पर परखने के बाद प्रमाणपत्र दिया जाएगा।

सियासी इंजीनियरिंग की चुनौतियां

डॉ. एके वर्मा

सपा-बसपा अभी भी जातीय समीकरणों और अस्मिता की राजनीति में उलझी हैं जबकि राजनीति कहीं आगे निकल गई है

यह माना जा सकता है कि कर्नाटक से कोलकता तक राजनीतिक दल सोशल इंजीनियरिंग की जगह पॉलिटिकल इंजीनियरिंग पर ध्यान दे रहे हैं। जहां राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा के विरुद्ध महागठबंधन बनाने का प्रयास हो रहा है तो वहीं महागठबंधन को धता बता अखिलेश यादव और मायावती ने उत्तर प्रदेश में चुनाव पूर्व गठबंधन कर लिया। इसमें अजीत सिंह की रालोद भी शामिल मानी जा रही है। यह सतही पॉलिटिकल इंजीनियरिंग किसी सोशल इंजीनियरिंग की आधारशिला पर नहीं खड़ी। शीर्ष नेता तो मिल गए, लेकिन उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं से पूछने की जरूरत नहीं समझी। यह पॉलिटिकल इंजीनियरिंग 26 वर्ष पूर्व मुलायम सिंह यादव और कांशीराम के बीच हुए समझौते की याद दिलाती है जिसके चलते 1993 में उप्र में सपा-बसपा गठबंधन सरकार बनी थी। क्या मौजूदा प्रयोग उसकी पुनरावृत्ति कर सकेगा? पिछली सियासी इंजीनियरिंग के पीछे एक सोशल इंजीनियरिंग थी। कांशीराम ने 1978 में बामसेफ बनाया जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े और मुस्लिम शामिल थे। 15 वर्षों से बामसेफ और डीएस-4 के जरिये दलित और पिछड़े साझा आंदोलन का हिस्सा रहे थे। इसके बावजूद यह सरकार कुछ महीने ही चल पाई। 1995 में सपा-बसपा तनाव ने लखनऊ गेस्टहाउस कांड का रूप ले लिया, जिसमें सपाइयों ने मायावती पर जानलेवा हमला किया। दलितों और पिछड़ों में कभी सामाजिक केमिस्ट्री भी रही नहीं। उलटे भूमिहीन दलितों का सर्वाधिक शोषण पिछड़े वर्ग के भूस्वामियों ने किया। सपा-बसपा गठजोड़ के पीछे दलित-पिछड़ों के बीच 26 वर्षों की कटुता का इतिहास भी है। जहां शिवपाल सिंह के अलग होने से सपा कमजोर हुई है वहीं बसपा ने अपने आधार स्तंभों-बाबूसिंह कुशवाहा, स्वामीप्रसाद मौर्य और नसीमुद्दीन को पार्टी से निकाल दिया है। क्या ऐसी संगठनात्मक कमजोरियों के चलते सपा-बसपा कल्पना भी कर सकती है कि वे 1993 का प्रदर्शन दोहरा पाएंगी?

गोरखपुर और फूलपुर उपचुनाव में सपा-बसपा गठबंधन की जीत को अपने आकलन का आधार बताने वाले भूल जाते हैं कि वहां बसपा लड़ी ही नहीं थी और इसी कारण दलित मतों का सपा के पक्ष में हस्तांतरण आसान हो गया था। क्या 2019 के लोकसभा चुनावों में भी ऐसा हो पाएगा? बसपा बहुत उम्मीद से यह चुनाव लड़ रही है। मायावती को लगता है कि दलित मतदाता सपा को वोट देगा, लेकिन गठबंधन की घोषणा के बाद से बसपा के भावी प्रत्याशियों की नींद उड़ गई होगी, क्योंकि मायावती केवल 38 सीटों पर ही चुनाव लड़ेंगी। 42 सीटें सपा-रालोद के खाते में जाएंगी। बसपा प्रत्याशी इसी घबराहट में होंगे कि न जाने किन 42 लोगों का टिकट कटने वाला है। यह बड़ी संख्या है और अभी मायावती को इसके नकारात्मक परिणामों का आभास नहीं होगा। ठीक यही स्थिति सपा के प्रत्याशियों की भी होगी। सपा के भी 42 प्रत्याशियों का टिकट कटेगा। अखिलेश को भी अपने भावी प्रत्याशियों के रोष का अंदाजा नहीं होगा। क्या विकल्प है ऐसे नाराज प्रत्याशियों के सामने? उन्हें तो अपना राजनीतिक भविष्य खत्म होता दिख रहा होगा। क्या सपा-बसपा के ऐसे प्रत्याशी फिर भी अपनी पार्टी का आदेश मानकर एक-दूसरे को अपने मतों का हस्तांतरण कराएंगे या वे राष्ट्रीय पार्टियों कांग्रेस और भाजपा की ओर रुख करेंगे?

अवधेश राजपूत

1989 में उप्र में कांग्रेस के अवसान के साथ दलितों और पिछड़ों के पास बसपा और सपा का विकल्प था, लेकिन आज उनके लिए इन दोनों के अलावा भाजपा महत्वपूर्ण विकल्प बनकर उभरी है। ध्यान रहे राज्य में लोकसभा के सभी दलित सांसद और विधानसभा के लगभग 80 प्रतिशत दलित विधायक भाजपा के हैं जो पार्टी को दलितों से जोड़ने में समर्थ हैं। पीएम मोदी की पिछड़ी जाति को सार्वजनिक कर कांग्रेस ने स्वयं ही पिछड़ों को भाजपा में वैकल्पिक नेतृत्व की उपलब्धता का संदेश दे दिया है। राज्य की सियासी इंजीनियरिंग में 'गैर-भाजपावाद' और 'गैर-कांग्रेसवाद' दोनों का समावेश है। गैर-भाजपावाद तो समझ में आता है, लेकिन गैर-कांग्रेसवाद नहीं। 2017 विधानसभा चुनावों में राहुल और अखिलेश कुछ वैसे ही साझा प्रेस कांफ्रेंस कर रहे थे जैसे हाल में मायावती और अखिलेश ने की। अखिलेश कुछ लंबी चाल चलते दिख रहे हैं। कांग्रेस को गठजोड़ से बाहर रख और यह दावा कर कि प्रधानमंत्री उत्तर प्रदेश से ही होगा, अखिलेश ने न केवल मायावती के सामने पीएम पद का लालीपॉप पेश किया है, वरन लंबी अवधि का गठजोड़ कर आगामी विधानसभा चुनावों में अपनी मुख्यमंत्री पद की दावेदारी सुनिश्चित कर ली है। इस रणनीति के चलते अखिलेश राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी महागठबंधन में पीएम पद के लिए मायावती का ही नाम आगे करेंगे ताकि न केवल उनका विश्वास जीत सकें वरन अपनी मुख्यमंत्री की दावेदारी को और पुख्ता भी कर सकें।

पॉलिटिकल इंजीनियरिंग के दांवपेच में फंसकर मायावती और अखिलेश भूल गए कि उन्होंने उप्र में भाजपा बनाम महागठबंधन के संभावित सीधे मुकाबले को त्रिकोणीय संघर्ष में बदल दिया जो उन्हें नुकसान और भाजपा को फायदा पहुंचा सकता है। छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और राजस्थान के हालिया चुनावों में जीत से उत्साहित कांग्रेस उप्र में मजबूती से चुनाव लड़ेगी। यह प्रियंका गांधी वाड्रा को महासचिव बनाकर पूर्वी उप्र का प्रभार सौंपने से और स्पष्ट हो गया है। राज्य में कांग्रेस का जनाधार अभी पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है। इसकी पुष्टि 2009 के आम चुनाव थे जिसमें कांग्रेस ने पुरानी नौ में से छह सीटें हारने के बाद भी 18 नई सीटें जीती थीं। उसने 21 सीटें जीतकर चौंकाया था।

सपा-बसपा अभी भी जातीय समीकरणों और अस्मिता की राजनीति में उलझी हैं, जबकि राजनीति आगे निकल गई है। जिस गति से पार्टियों ने अपनी वैचारिक अस्मिता खोई है उसी तेजी से अस्मिता की राजनीति अर्थात जातिवादी राजनीति कमजोर हुई है। मतदाता अपने हित संवर्धन को लेकर सजग है। आज अति दलित मायावती के साथ नहीं। उन्हें वैकल्पिक मंच उपलब्ध है। अति पिछड़े भी सपा के साथ नहीं। उनके पास भी विकल्प हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में अपना दल, सुहलदेव भारतीय समाज पार्टी, निषाद पार्टी, पीस-पार्टी आदि की भूमिका अहम होती जा रही है। अपने बलबूते वे शायद कुछ न कर सकें, लेकिन सहयोगी के रूप में वे किसी भी पार्टी के लिए प्रभावी वोट-बैंक हो जाते हैं।

मायावती में वोट-हस्तांतरण क्षमता तो है, लेकिन अखिलेश की यह क्षमता संदिग्ध है। 2017 विधानसभा चुनावों में सपा-कांग्रेस गठजोड़ के बावजूद कांग्रेस को मात्र सात सीटें मिलीं। 2012 के बाद मायावती के प्रभाव में भी कमी आई है। चूंकि वह जाटव समाज को तरजीह देती रहीं इसलिए अति दलितों का बड़ा वर्ग भाजपा की ओर खिसक गया। इसी प्रकार सपा की उपेक्षा से अति पिछड़े भाजपा में चले गए। पीएम मोदी ने भी सरदार पटेल, लोहिया, आंबेडकर आदि के प्रति आदर दिखाकर समावेशी राजनीति के माध्यम से पिछड़ों और दलितों को अपनी पार्टी से जोड़ा है। इसके बावजूद 2019 में यह देखना होगा कि जनता देशहित में लिए गए कठोर निर्णयों और समावेशी विकास के मुकाबले सियासी इंजीनियरिंग एवं जातिवादी राजनीति को कितना तरजीह देती है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोसायटी एंड पॉलिटिक्स के निदेशक हैं)

response@jagran.com

चुनावी वादों की बारिश

आशुतोष झा

चुनाव आते ही राजनीतिक दल जो पहले नहीं कर पाए उसे कर दिखाने का खम ठोकने लगते हैं

चुनावी वक्त में वादों की ऐसी भरपूर बारिश होती है कि लगता है लोकतंत्र नेताओं के लिए ही नहीं, जनता के लिए सचमुच महापर्व होता है। अफसोस यह है कि यह बारिश कुछ ऐसी होती है जिसमें जनता सूखी ही रह जाती है। उसके हाथ भरोसे की डोर ही बचती है। वरना क्या कारण है कि राजनीतिक पार्टियों द्वारा लगभग 70 वर्षों से अब तक शब्दों के हेरफेर से पुराने वादे ही दोहराए जा रहे हैं। वे जो पहले पूरा नहीं कर पाए, चुनाव आते ही उसे भी पूरा करने का खम ठोकने लगते हैं। साफ है कि राजनीतिक दल भी प्यार और जंग में सब कुछ सही वाली कहावत को सटीक मानते हैं। सिर्फ जीत मायने रखती है, उसके तौर-तरीके नहीं। चूंकि साध्य के फेर में साधनों की पवित्रता की परवाह नहीं की जाती इसलिए जनता को भरमाकर बांट कर चुनावों में सफलता हासिल करने की पुरजोर कोशिश की जाती है।

मोदी सरकार के आखिरी बजट के संदर्भ में यह मानकर चला जा रहा है कि चार वर्षों से कठोर फैसले के लिए जानी जाने वाली सरकार अब नरम पड़ गई है। वह बजट में किसानों और आम लोगों के लिए कुछ विशेष कदम उठा सकती है। अगर ऐसा होता है तो यह इस बात की स्वीकारोक्ति होगी कि इस सरकार की चार साल की योजनाएं अधूरी रह गईं? क्या उन योजनाओं पर सवाल नहीं उठेगा जिनका भाजपा देशभर में बखान करती घूमती रही? इसके साथ ही क्या उसकी अब तक की सोच और उपलब्धियों पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगेगा? वास्तव में यही सवाल मुख्य विपक्ष कांग्रेस से भी होगा। पिछले एक महीने में कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी तीन बड़ी घोषणाएं कर चुके हैं-किसान कर्ज माफी, न्यूनतम आमदनी की गारंटी और महिला आरक्षण। क्या वह बताएंगे कि इसमें ऐसा क्या है जो कांग्रेस की ओर से पहली बार कहा जा रहा है? क्या यह सच नहीं कि 50 साल पहले कांग्रेस ने गरीबी हटाने का नारा दिया था? कांग्रेस के आखिरी कार्यकाल यानी संप्रग-दो के वक्त तक भारत में गरीबी का आंकड़ा लगभग 30 फीसद था। अगर न्यूनतम आमदनी गरीबी खत्म करने की गारंटी है तो इतने वर्षों तक उसे क्यों नहीं लागू किया गया? किसान कर्ज माफी तो 2009 में भी आई थी, लेकिन यह सच्चाई है कि वह सफल नहीं हुई। हां, कांग्रेस को राजनीतिक सफलता जरूर मिली थी। आज देश के कई राज्यों में किसान कर्ज माफी योजना किसी न किसी तरह लागू है और उसके नतीजे किसी से छिपे नहीं। जहां तक महिला आरक्षण की बात है तो राहुल गांधी को इसका भी जवाब देना चाहिए कि राज्यसभा से विधेयक पारित कराने के बाद जब कांग्रेस केंद्र में सत्ता में रही थी तब वह इस पर आगे क्यों नहीं बढ़ी सकी? उस वक्त भाजपा की ओर से वही बोल बोले जा रहे थे जो अब कांग्रेस बोल रही है। मसलन हम समर्थन कर रहे हैं, कांग्रेस की सरकार चाहे तो बिल पास करा सकती है। सच्चाई तो यह है कि आज अगर राजग और कथित महागठबंधन की कसौटी पर इसे कसा जाए तो राहुल गांधी के लिए इसे पास करना बहुत मुश्किल है। इसके समक्ष अभी भी वही चुनौती है जिसके कारण पहले कांग्रेस इसे लोकसभा से पास नहीं कर पाई थी। राजद, सपा, जैसे दल और शरद यादव जैसे नेता वर्तमान महिला आरक्षण विधेयक के खिलाफ हैं।

माना जा रहा है कि चुनाव घोषणा पत्र तैयार होने के पहले राहुल गांधी कुछ और लोकलुभावन घोषणाएं कर सकते हैं। इसी कारण यह जुमला चल निकला है कि कांग्रेस हर उस पत्तल को जूठा कर देना चाहती है जो भाजपा चुनाव से पहले जनता के सामने सजाना चाहती है। एक ऐसे वक्त जब आगामी आम चुनाव को युद्ध की तरह देखा जा रहा है तब ऐसी रणनीति पर हैरानी नहीं। यह देखना भी दिलचस्प है कि आज वही बसपा प्रमुख मायावती कांग्रेस के वादों पर सवाल खड़े कर रही हैं जिन्हें महागठबंधन का भावी और अहम साथी माना जा रहा है। इसके साथ ही यह भी अभी पूरी तरह पता नहीं कि राजद और सपा कांग्रेस की बैसाखी हैं या नहीं? दूसरी ओर भाजपा अपने कोर मुद्दे पर इसलिए नहीं बढ़ सकती, क्योंकि जदयू और लोजपा को उन पर एतराज है। पूर्ण बहुमत हासिल कर सरकार चलाने के बाद भी यह हाल है तो फिर सवाल है कि ऐसे चुनावी वादों पर जनता भरोसा ही क्यों करे? यह जानते समझते हुए कि एक राजनीतिक दल की भारी-भरकम घोषणाएं सत्ता की सीढ़ी चढ़ते हुए हांफने लगती हैं। उसके सामने कभी संसाधन तो कभी राजनीतिक मजबूरी की आड़ में छिपने का रास्ता अक्सर खुला होता है। आखिर राजनीतिक दलों के इस शह-मात में जनता कहां खड़ी है? उसके हाथ क्या लगने वाला है?

नेताओं की भारी-भरकम घोषणाओं और खासकर उनके लोकलुभावन वादों के समक्ष चुनाव आयोग असहाय सा है। वह नेताओं के बेलगाम बयानों की निंदा करने से अधिक कुछ नहीं कर पाता। वैसे उसका मानना है कि घोषणाएं वही होनी चाहिए जिन्हें पूरा किया जा सके। राजनीतिक दलों को उनकी पूरी रूपरेखा पेश करनी चाहिए। यह पहले ही साफ हो कि जो वादा किया जा रहा है उसके लिए पर्याप्त संसाधन हैं या नहीं? किसानों का कर्ज लगभग 4 लाख करोड़ रुपये है। अगर न्यूनतम आमदनी योजना लागू की जाए तो उस पर भी लगभग सात लाख करोड़ रुपये का खर्च आएगा। क्या भारत फिलहाल इस स्थिति में है कि बाकी जन कल्याणकारी योजनाओं के साथ इतनी बड़ी योजना शुरू की जा सके? मनरेगा जैसी सफल योजनाओं की यात्रा के गवाह जानते हैं कि जब उसके लिए मजदूरी तय करने की बात हो रही थी तो तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री रघुवंश प्रसाद सिंह को केंद्रीय कैबिनेट के अंदर कितनी कठिन लड़ाई लड़नी पड़ी थी, लेकिन विपक्ष में होने का एक फायदा होता है, आप घोषणाएं कर सकते हैं। यही काम पिछली बार भाजपा ने किया था। सरकार के हाथ बंध जाते हैं, क्योंकि उसकी घोषणाएं किए गए कामकाज के आधार पर आंकी जाती हैं, जबकि विपक्ष को कुछ ज्यादा छूट होती है।

(लेखक दैनिक जागरण के राष्ट्रीय ब्यूरो प्रमुख हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

सत्संग

जीवन उद्देश्य की प्राप्ति में सत्संग की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सत्संग क्या है? इस संसार में तीन पदार्थ-ईश्वर, जीव और प्रकृति-सत हैं। इनके बारे में जहां अच्छी तरह बताया जाए, उसे सत्संग कहते हैं। श्रेष्ठ और सात्विक जनों का संग करना, उत्तम पुस्तकों का सत्संग। यहां आशय अध्ययन करना, पवित्र और धार्मिक वातावरण का संग करना, यह सब सत्संग है। सत्संग हमारे जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि शरीर के लिए भोजन। भोजनादि से हम शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं, किंतु आत्मा जो इस शरीर की मालिक है, उसकी संतुष्टि के लिए कुछ नहीं करते।

सत्संग जीवन को निर्मल और पवित्र बनाता है। यह मन के बुरे विचारों एवं पापों को को दूर करता है। भतृहरि ने जो लिखा है, उसका आशय है कि 'सत्संगति मूर्खता को हर लेती है, वाणी में सत्यता का संचार करती है। दिशाओं में मान-सम्मान को बढ़ाती है, चित्त में प्रसन्नता को उत्पन्न करती है और दिशाओं में यश को विकीर्ण करती है।' वस्तुतः सत्संगति मनुष्य का हर तरह से कल्याण करती है। जिस तरह हम साबुन से कपड़े के मैल को धुल डालते हैं, उसी तरह सत्संग से अंतःकरण के कलुष को धुल देते हैं। जैसे चाशनी के मैल को साफ करने के लिए कुछ मात्रा में दूध डालते हैं, उसी तरह जीवन के दोषों को दूर करने के लिए सत्संग करते हैं। प्रातःकाल का भोजन सायंकाल तक और सायंकाल का भोजन रात्रिभर शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। ऐसे ही सुबह किया हुआ सत्संग पूरे दिन हमें अधर्म और पाप से बचाए रखता है। सायंकाल का सत्संग रातभर हमें कुत्सित विचारों से बचाता है। मानव सत्संग से सुधरता है और कुसंग से बिगड़ता है। कहा भी गया है कि जैसा होगा संग वैसा चढ़ेगा रंग।

सत्संग मानसिक समस्याओं की चिकित्सा है। जब मन में काम, क्रोध रूपी वासनाओं की आंधी उठे और ज्ञान रूपी दीपक बुझने लगे तो ऐसे में सत्संग औषधि का कार्य करता है। विद्वानों का मानना है कि सत्संग से विवेक जागृत होता है। विवेक के जागृत होने पर ही समुचित तौर पर यह जाना जा सकता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा? क्या नैतिक है और क्या अनैतिक? बहरहाल सत्संग की महिमा का हमारे धर्मग्रंथों में विस्तृत वर्णन किया गया है।

निष्ठा विद्यालंकार

अपनी सुरक्षा अपने हाथ

सुनीता मिश्रा

एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में 78.7 प्रतिशत सड़क दुर्घटनाएं चालकों की गलती के कारण होती हैं

यातायात के नियमों के प्रति जागरूकता फैलाने और लोगों को सड़क दुर्घटनाओं से बचाने के लिए प्रतिवर्ष राष्ट्रीय सड़क सुरक्षा सप्ताह मनाया जाता है। इस बार 30वां राष्ट्रीय सड़क सुरक्षा सप्ताह 4 से 10 फरवरी तक मनाया जाएगा। तेज रफ्तार, शराब पीकर गाड़ी चलाना, हेलमेट और सीट बेल्ट की अनदेखी करना दुर्घटनाओं के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार हैं। सड़क दुर्घटनाओं के लिए प्रशासन भी कम जिम्मेदार नहीं है, क्योंकि खराब सड़कों की वजह से भी देश में हर एक मिनट में 22 सड़क दुर्घटनाएं होती हैं। इन सबके अलावा सड़कों पर बढ़ते वाहन भी दुर्घटनाओं के लिए जिम्मेदार हैं।

पूरे विश्व में भारत में सबसे अधिक सड़क दुर्घटनाएं होती हैं। देश में वर्ष 2012 में 4.90 लाख सड़क दुर्घटनाओं में 1.38 लाख लोगों को जान गंवानी पड़ी थी। हालांकि एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में 78.7 प्रतिशत दुर्घटनाएं चालकों की गलती से ही होती हैं। वहीं अंतरराष्ट्रीय सड़क संघ के अनुसार विश्व में सड़क दुर्घटनाओं में प्रत्येक वर्ष 1.2 मिलियन व्यक्ति मारे जाते हैं और 50 मिलियन प्रभावित होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि यदि इस दिशा में ठोस कार्रवाई नहीं की जाती है तो वर्ष 2030 तक विश्व में सड़क दुर्घटनाएं लोगों की मौत का पांचवां बड़ा कारण बन जाएंगी। जाहिर है जब वाहन चालक यातायात के नियमों का पालन नहीं करेंगे, नशे में वाहन चलाएंगे, ड्राइविंग करते हुए मोबाइल पर बात करेंगे, वाहनों में जरूरत से अधिक भीड़-भाड़ होगी, निर्धारित गति से तेज गाड़ी चलाई जाएगी तो सड़कें जानलेवा बन ही जाएंगी।

इसके मद्देनजर सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय ने देश में सड़क दुर्घटनाओं को कम करने के लिए राष्ट्रीय सड़क सुरक्षा नीति को मंजूरी देने के साथ ही विभिन्न उपाय किए हैं। इसमें यातायात नियमों को लेकर जागरूकता बढ़ाना, सड़क सुरक्षा सूचना पर आंकड़ें एकत्रित करना, सड़क सुरक्षा की बुनियादी संरचना के अंतर्गत कुशल परिवहन अनुप्रयोग को प्रोत्साहित करना तथा सुरक्षा कानूनों को लागू करना शामिल हैं। हालांकि पूर्व में वाहन चलाते समय सुरक्षा उपायों जैसे-हेलमेट, सीट बेल्ट, पॉवर स्टेयरिंग और सड़क सुरक्षा जागरूकता से संबंधित अभियान पर जोर दिया, लेकिन इसमें मामूली अंतर ही आ पाया है। ऐसे में आज यह बड़ी समस्या बनती जा रही है, लोगों में धैर्य की कमी और जल्दी के चलते वे अपनी मौत का जोखिम लेने से भी नहीं डर रहे हैं।

इन सड़क हादसों से न केवल इंसान, अपितु जानवरों को भी बहुत नुकसान होता है, क्योंकि वे इंसानों की तरह न तो यातायात के नियम जानते हैं और न ही उन्हें कई बार वाहनों की तेज गति का पता चल पाता है। ऐसे में सरकार को सड़क दुर्घटना से पीड़ित लोगों के इलाज के लिए कई प्रकार की योजनाएं चलानी होंगी और लोगों में यातायात के नियमों के प्रति जागरूकता फैलाने का काम करना होगा। वहीं सड़क पर वाहन चलाते हुए लोगों को भी पैदल चलने वालों और जानवरों का विशेष ध्यान रखना होगा। इससे न केवल हम खुद को, बल्कि दूसरों को भी दुर्घटनाओं से बचा सकते हैं।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

तनाव की बढ़ती समस्या चिंताजनक

श्रीप्रकाश शर्मा ने अपने आलेख परीक्षा के तनाव का जिम्मेदार कौन के माध्यम से परीक्षा के कारण बच्चों पर बढ़ रहे तनाव रूपी नकारात्मकता को उजागर किया है। आजकल बच्चे कम उम्र में ही तनाव के शिकार होते जा रहे हैं, जो चिंता का विषय है। इसका मुख्य कारण है, उन पर पढ़ाई का बढ़ता दबाव। खेलने-कूदने की उम्र में ही बच्चों के कंधों पर किताबों का बोझ डाला जा रहा है। पाठ्यक्रम इतने बड़े होते हैं कि बच्चे उसे ठीक से खत्म ही नहीं कर पाते। दूसरी तरफ अभिभावक भी उन पर अच्छे अंक लाने का दबाव डालते हैं, जिसके कारणवश बच्चे पर परीक्षा से पूर्व अधिक दबाव बन जाता है, जिसका परिणाम नकारात्मक ही होता है। बच्चों पर पढ़ाई के दबाव को कम करने के लिए पाठ्यक्रम को छोटा तथा सटीक रखने की आवश्यकता है। स्कूलों में पढ़ाई के स्तर को बढ़ावा मिले ताकि बच्चे कोचिंग सेंटर में समय बर्बाद करने के बजाय स्वयं पढ़ने में ज्यादा रुचि लें। अभिभावकों को भी यह समझना होगा कि महज अच्छे अंक प्राप्त करना ही योग्यता का प्रमाण नहीं होता। इसलिए वे अपने बच्चों पर निरर्थक दबाव डालने के बजाय उनकी मदद करें। बच्चों को अपना ज्यादा वक्त पढ़ाई पर देना चाहिए। बेवजह सोशल मीडिया या फोन पर अपना बहुमूल्य वक्त बर्बाद करने से तनाव बढ़ता है। बच्चों को यह समझना चाहिए कि सही दिशा में और नियमित रूप से की गई मेहनत से तनाव खत्म होता है और सकारात्मक परिणामों की प्राप्ति होती है।

सौरभ पाठक, ग्रेटर नोएडा

साधु-संतों का सम्मान

बाबा रामदेव का यह कहना कि किसी साधु-संत को भारत रत्न से सम्मानित नहीं किया, अपनी जगह ठीक है। भारत में ऐसे अनेकों धर्मगुरु हैं जिन्होंने अपनी धार्मिक शिक्षा के बल पर लोगों को सद्भावना का संदेश दिया है। पहले यह सम्मान केवल विशेष क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करने वाले व्यक्तियों को ही दिया जाता था, लेकिन इस सम्मान ने अब ये सीमाएं भी लांघ ली हैं। जब भारतीय मूल के न होने के बावजूद भी खान अब्दुल गफ्फार खान और नेल्सन मंडेला जैसे व्यक्तियों को यह सम्मान दिया जा सकता है तो धर्म से जुड़े लोगों को क्यों नहीं? आंकड़ों के मुताबिक सर्वाधिक भारत रत्न से सम्मानित व्यक्ति राजनीति से ही ताल्लुक रखते हैं। ऐसे में भारत रत्न के वास्तविक हकदार इससे वंचित होते जा रहे हैं। यह सम्मान धर्म के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान करने वाले लोगों को भी मिलना चाहिए।

पिंटू सक्सेना, दिल्ली

मेलबाक्स

राहुल की परींकर से भेंट

गोवा के मुख्यमंत्री मनोहर परींकर बीमार चल रहे हैं और राहुल गांधी उनका हालचाल जानने उनसे मिलने गए थे। यह एक शिष्टाचार भेंट थी, लेकिन राहुल गांधी ने इस भेंट का इस्तेमाल राजनीति के लिए कर लिया, जिसे सही नहीं ठहराया जा सकता। राफेल पर बात हुई या नहीं, यह अलग बात है। सवाल यह है कि राहुल गांधी एक बीमार व्यक्ति से मिलने के बाद उनके नाम को किसी विवाद में क्यों घसीट रहे हैं? ऐसा करके उन्होंने अपनी ही छवि खराब की है। इतनी बड़ी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष को ऐसा नहीं करना चाहिए था।

बृजेश श्रीवास्तव, गाजियाबाद

गरीबी का दंश

कई दशक से सरकारें गरीबी हटाने की बातें करती आ रही हैं, लेकिन इस दिशा में कोई सफलता नहीं मिल सकी है। कायदे में गरीबी को थोथे नारेबाजी से हटाना संभव नहीं है। इसके लिए सरकार को गंभीर प्रयास करने होंगे। जब तक यहां की सरकारें और उनके कर्णधार उसके प्रति संजीदा नहीं होंगे, इससे निपटना मुश्किल है।

निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद

खुद के लिए भी घातक

पूर्व रक्षामंत्री मनोहर परींकर का हालचाल पूछने गए कांग्रेस अध्यक्ष ने इस संवेदनशील समय को भी राफेल डील से जोड़ दिया। लगता है आज भारतीय राजनीति में शिष्टाचार, मान मर्यादा और आत्मसम्मान का कोई स्थान नहीं रह गया है। इससे उठे विवाद से जन साधारण में क्या संदेश जाएगा? हिट एंड रन वाली राजनीति कभी कारगर साबित नहीं हो सकती। इससे खुद की छवि को भी नुकसान पहुंच सकता है।

दीपक गौतम, सोनीपत

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व. नरेन्द्र मोहन, संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) - विष्णु प्रकाश त्रिपाठी* दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय में ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।